फ़िल्म समीक्षा

फ़िल्म : अपराजिता

निर्देशक : रमन कुमार

भाषा : हिन्दी

अवधि : 60 मिनट

स्वैच्छिक स्वास्थ्य संगठन वीहाई (वालेंटरी हैल्थ असोसियेशन ऑफ़ इण्डिया) तथा स्मिता प्रोजेक्ट प्रस्तुतिकरण के सहयोग से निर्मित यह वृत्तचित्र एक युवा किशोरी अपराजिता के संघर्षों और प्रयासों का चित्रण है। इस फ़िल्म में उसकी कठिनाइयों, उससे बाहर निकलने की कोशिश तथा असल पहचान के लिए आगे बढ़ने के पहलुओं पर भी नज़र डाली गई है।

कहानी की शुरूआत एक किशोरी अपराजिता और उसकी मां के बीच बातचीत से होती है जिसमें किशोरी अपनी पसंद के कपड़े पहनने के लिए प्यार से गुज़ारिश कर रही है। परन्तु मां दादा व पिता की पसंद को आगे रखते हुए उसे ऐसा करने से मना करती है। अपने तर्क को आगे रखते हुए अपराजिता कहती है कि आज उसका सोलहवां जन्मदिन है व इस मौके पर उसका हक़ बनता है कि वह अपनी पसंद के कपड़े यानी पैंट पहन सके। बेटी की बात सुनकर मां उसे अपने मन की करने के लिए रज़ामंदी दे देती है।

अगले दृश्य में अपराजिता के घर उसके जन्मदिन की पार्टी हो रही है। अपराजिता दादाजी को केक खिलाने आती है परन्तु दादाजी नाखुश हैं। पार्टी का शोर-शराबा उन्हें पसंद नहीं है। वह अपने बेटे को बुलाकर डांट लगाते हैं जिसे सुनकर बेटा पार्टी खत्म होने का ऐलान कर देता है।

अगले दिन अपराजिता बास्केट बॉल की प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए घर में अभ्यास कर रही है ताकि वह स्कूल में होने वाले मैच में शामिल हो सके। परन्तु दादाजी गुस्सा होकर कहते हैं कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए और स्कूल के बाद सीधे घर आकर काम काज सीखना चाहिए। फ़िल्म के मध्यान्तर तक अपराजिता के लिए दादाजी की तरफ से हिदायतें ही होती हैं जिनमें ख़ासतौर पर लड़कियों को चूल्हा-चौका संभालने व घर के अन्य कार्यों में सहयोग देने के लिए तैयार होने के संदेश दिए जाते हैं।

फ़िल्म के अगले भाग में अपराजिता के पिता की नौकरी छूट जाती है। पर पिता चाहते हैं कि बच्चों की पढ़ाई-लिखाई जारी रहे। इसके लिए वे अपनी जमा-पूंजी इस्तेमाल करना चाहते हैं। पर दादाजी को

यह गवारा नहीं है। वे आदेश देते हैं कि लड़की की पढ़ाई बंद कर दी जाए और जमा की हुई रकम उसकी शादी के लिए सुरक्षित रखी जाए।

यह जानकर अपराजिता के सारे सपने टूटकर बिखर जाते हैं। उच्च शिक्षा और मौज-मस्ती की जगह रोक-टोक, पाबंदियां और मनाहियां ले लेती हैं। नाउम्मीदी और उदासी उसे घेर लेती है।

अपराजिता की बुआ महिला कॉलेज में कला शिक्षिका है। उनका आना अपराजिता में जीवन में एक बार फिर उम्मीद की किरण लेकर आता। वह अपनी भतीजी को समझाती है कि वह मायूस न हो। वह अपने हाथ में ब्रश थामकर अपने जीवन में रंग भर सकती है। चित्रकारी के शौक के ज़रिए वह एक आत्म-सम्मान से भरी खुशहाल ज़िंदगी बसर कर सकती है। बुआ के इन प्रगतिशील विचारों और खुली सोच से अपराजिता को हौसला और हिम्मत मिलती है। वह ठान लेती है कि वह ज़िंदगी में कुछ करके साबित कर देगी कि लड़कियां किसी से कम नहीं होतीं।

बुआ दादाजी से अपराजिता को अपने साथ ले जाने की अनुमति ले लेती है। बुआ के यहां अपराजिता की मुलाकात अन्य लोगों से होती है। छः महीने के उपरांत दादाजी अपराजिता को वापस बुलाने के लिए कहते हैं। माता-पिता उसे लेने के लिए बुआ के घर जाते हैं।

अपराजिता अपने माता-पिता के साथ वापस जाने से इंकार कर देती है। उसके साथी, सहयोगी शिक्षक और बुआ उसके मां-बाप को समझाते हैं कि अपराजिता पर कोई दबाव न डालें। अपराजिता अपना निर्णय अपनी मां को बताती है— वो घर वापस नहीं आना चाहती बल्कि यहां रहकर अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई करना चाहती है। मां मान जाती है और अपने पति को टाल मटोल करके घर वापस जाने को कहती है। इस बात को किशोरी के पिता भी समझ जाते हैं। अपनी पत्नी के निर्णय का साथ देते हुए वह घर वापस चले जाते हैं।

यह सब जानकर दादाजी बहुत दुःखी होते हैं। कुछ समय बाद दादाजी को दिल का दौरा पड़ जाता है। अब डॉक्टर बन चुकी अपराजिता दादाजी की खूब देखभाल करती है। होश आने पर जब दादाजी को यह पता चलता है कि आज वे अपराजिता के कारण ही ज़िंदा है तो वह अपने किए पर बेहद शर्मिंदा होते हैं और पोती से माफ़ी मांगते हैं। उसे आगे बढ़ने का आशीर्वाद देते हुए दादाजी अपनी गलती मान लेते हैं।

अपराजिता एक ऐसी युवा लड़की के संघर्ष की कहानी है जिसका दृढ़ संकल्प, लगन और साहस उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। इस वृत्तचित्र में निर्देशक ने समाज में व्याप्त गैर बराबरी, भेदभाव और पितृसत्तात्मक मानदण्डों का बखूबी चित्रण किया है। समाज में लड़कियों के साथ होने वाली नाइंसाफ़ी, परिवार में उनका दोयम दर्जा तथा कदम-कदम पर उनके साथ होने वाले अन्याय को फ़िल्म में बड़े ही सहज तरीके से दर्शाया गया है।

फिल्म में यह भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है कि अगर मन में कुछ कर गुज़रने और आगे बढ़ने की चाह हो, परिवार व समाज के कुछ लोगों का सहयोग मिल जाए तो मंज़िल दूर नहीं। अगर लड़कियों को लड़कों की तरह मौके, हौसला और सहयोग मिले तो वे भी बेटों की तरह अपना नाम रोशन कर सकती हैं।

यह फ़िल्म युवाओं के साथ कार्यशालाओं में उपयोगी प्रशिक्षण सामग्री हो सकती है। आम जीवन की हक़ीक़तों से बुनी यह कहानी आत्म-मंथन और चर्चाओं को सघन बनाने में भी मददगार रहेगी।

सरिता बलोनी *जागोरी में कार्यरत हैं।*